डॉक्टर साहब...! आप मुझे स्टेरॉयड क्यों दे रहे हैं?

डॉ. स्कन्द शुक्ल
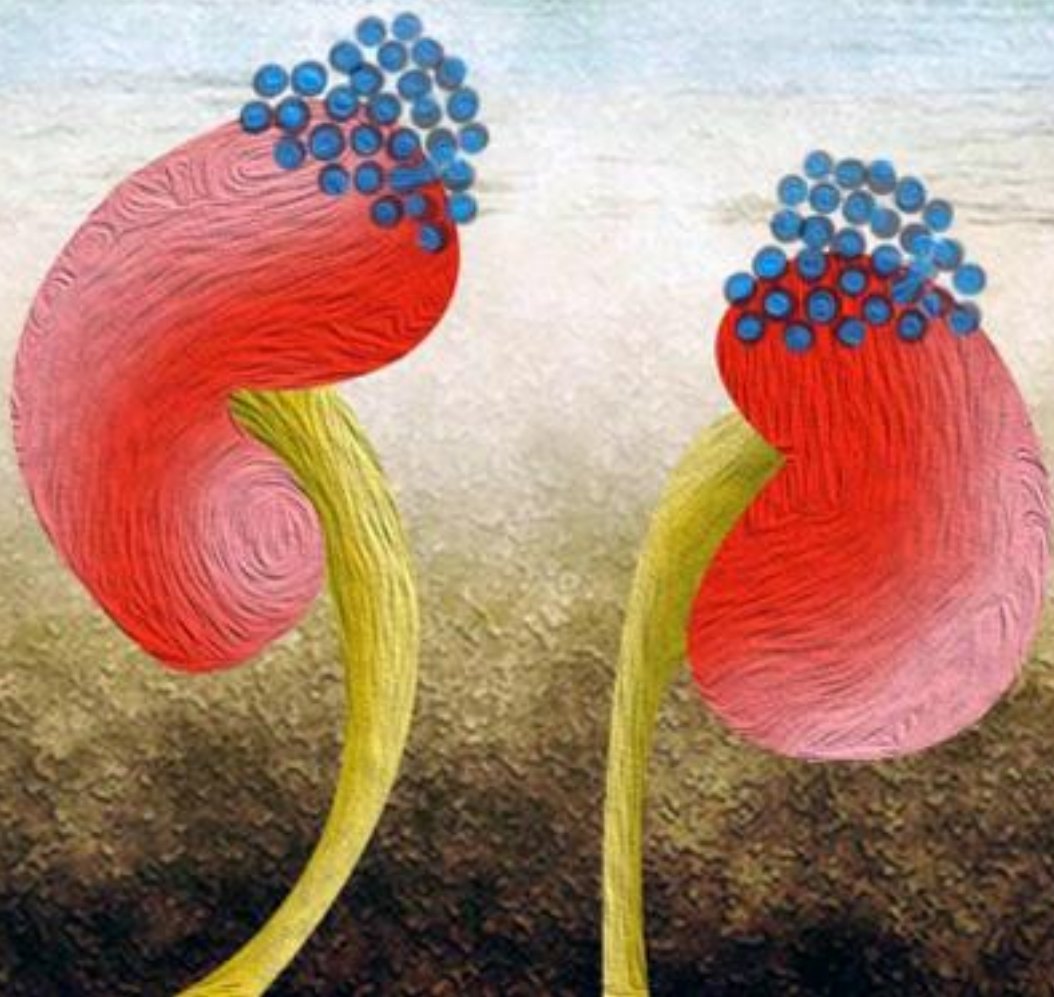
डॉक्टर साहब...! आप मुझे स्टेरॉयड क्यों दे रहे हैं?
लेखक: डॉ. स्कन्द शुक्ल

ई-प्रकाशन: 2019

आवरण चित्र इन्टरनेट से साभार.

लेखक

डॉ .स्कन्द शुक्ल

22 सितम्बर 1979 को राजापुर, बान्दा में जन्म. वर्तमान में लखनऊ में गठिया-रोग विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत. वृत्ति से चिकित्सक होने के कारण लोक-कष्ट और उसके निवारण से सहज जुड़ाव. साहित्य के प्रति गहन अनुराग आरम्भ से. अनेक कविताएँ-कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. साथ ही दो उपन्यास 'परमारथ के कारने' और 'अधूरी औरत' भी. सामाजिक मीडिया पर भी अनेकानेक विज्ञान-स्वास्थ्य-समाज-सम्बन्धी लेखों-जानकारियों के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार में सक्रिय.

कैटरपिलर-सा केमिकल लोचा...

रामचन्द्रन के जुड़वाँ नाती-नातिन गालव-बेला से मेरा विशेष स्नेह है. क्यों, यह मैं भी नहीं जानता. इस पुस्तिका को मुझसे लिखा लेने की प्रेरणा भी ये छह साल के छोटे बच्चे ही हैं. वह दिन मैं कभी भूल नहीं पाता जब बड़ी कोशिशों और संघर्षों के बाद ये-दोनों इस संसार में आये थे. गर्भकाल के दौरान इनकी माँ यानी रामचन्द्रन की बेटी को ऐसी कुछ समस्या हुई जिसके कारण डॉक्टर को जल्द सीज़ेरियन सेक्शन का निर्णय लेना पड़ा. ऑपरेशन से पहले उन्होंने उन गर्भस्थ शिशुओं के फेफड़ों को 'परिपक्व' करने के लिए एक ख़ास दवा दी थी. क्या यह इत्तेफ़ाक़ है कि आज उनमें से एक बच्चा अपनी ड्राइंग-शीट पर जो आकृति बना रहा है, उसका आकार उसी ख़ास दवा जैसा है?

"यह क्या बनाया बेटूलाल ने?" मैं पूछता हूँ.

"कैटरपिलर." गालव तन्मयता से बिना सिर उठाये उत्तर देता है.

मैं उस आकृति की ओर ध्यानपूर्वक देखता हूँ, देखता जाता हूँ .
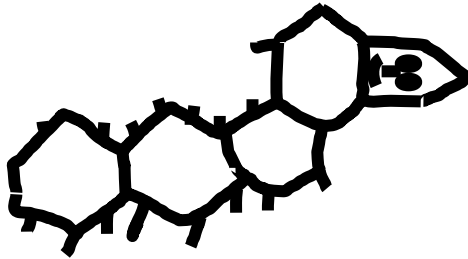
स्टेरॉयड: विषय-प्रवेश

रामचन्द्रन तनाव में है. पिछले कुछ दिनों से दफ़्तर में चल रहे माहौल के कारण तमतमाते चेहरे से उसके बोल फूटते हैं, "निकाल देंगे नौकरी से मुझे ये लोग! और नहीं रखेंगे साथ! निकाल देंगे, निकाल ही देंगे!"

रामचन्द्रन का तनाव उसके शरीर के भीतर एक बदलाव कर रहा है. उसके मस्तिष्क के एक हिस्से हायपोथैलमस से कुछ सन्देश नीचे जा रहे हैं. ये सन्देश वृक्कों (किडनी या गुर्दों) के ऊपर स्थित दो नन्हीं किन्तु बड़ी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों के लिये हैं, जिनका नाम अधिवृक्क या एड्रीनल है. (एड + रीनल = अधिवृक्क यानी वे ग्रन्थियाँ जो वृक्कों से जुड़ी हुई हैं अथवा उनके एकदम समीप हैं.)

अधिवृक्क या एड्रीनल ग्रन्थियाँ कोई मामूली अंग नहीं. इनसे ढेरों ऐसे रसायनों का स्राव रक्त में होता है, जिन्हें हम हॉर्मोन कहते हैं. ये हॉर्मोन ख़ून की धारा से होते हुए शरीर के अलग-अलग अंगों तक पहुँचते हैं. वहाँ ये भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ निभाते हैं. इन्हीं ढेर सारी भूमिकाओं में से एक तनाव के दौरान शरीर में अनेक ज़रूरी कामों को अंजाम देना है. इस तरह से एड्रीनल ग्रन्थियाँ तनाव से जूझने में मनुष्य के लिए मददगार साबित होती हैं. इसलिए रामचन्द्रन और उसके तनाव व इस तनाव के कारण एड्रीनल ग्रन्थियों से निकलने वाले इन हॉर्मोनों से हमारी यह कहानी शुरू होती है.
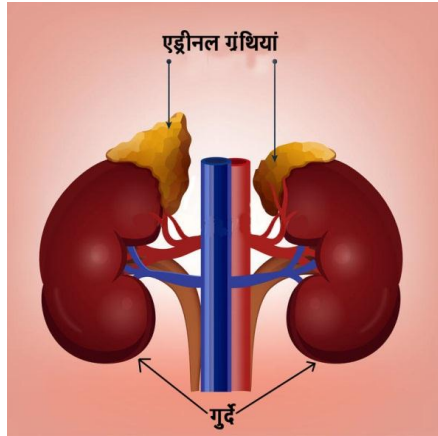
सम्भव है आपने स्टेरॉयड शब्द कभी सुना हो. सम्भव है कि आपका इन रसायनों से परिचय किसी समाचार-पत्र में किसी एथलीट द्वारा अनधिकृत रूप से स्टेरॉयड लेने की जानकारी से हुआ हो. अमुक देश के अमुक खिलाड़ी ने बेहतर प्रदर्शन के लिए स्टेरॉयड लिये और वह पकड़ा गया. शरीर में

स्टेरॉयड की पुष्टि होने के बाद अब उस पर अनेक वर्षों के लिए बैन लगा दिया गया है. एक बेहतर कॅरियर शुरू होते ही ख़त्म! या फिर यह भी हो सकता है कि कभी किसी बीमारी के लिए डॉक्टर ने आपको 'स्टेरॉयड-दवा' लिखी हो. फिर उस दवा पर चर्चा करते समय आपने रिश्तेदारों ने, मेडिकल-स्टोर वाले भैया से अथवा दूसरे किसी डॉक्टर ने नाक-भौं सिकोड़ी हों. यह क्या? यह दवा क्यों लिखी गई आपको? ध्यान रखिएगा. इसे ज़्यादा न खाइएगा. बहुत नुकसान करती है? जी, जी बिलकुल! स्टेरॉयड के बड़े सारे नुकसान हैं! इससे तो जितना दूर रहा जाए, उतना अच्छा!

स्टेरॉयड पर कोई भी अच्छी-बुरी राय बनाने से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि लोग इन रसायनों के विषय में कई मूलभूत बातों को जानें व समझें. कार्बन के परमाणुओं से निर्मित ये वे ख़ास अणु हैं, जो सभी जीव-जन्तुओं व पेड़-पौधों के भीतर मौजूद हैं. पृथ्वी पर मौजूद सभी जीवित प्राणी कोशिकाओं से बने हैं और कोशिकाओं के बाहर एक झिल्ली होती है जिसे कोशिका-झिल्ली या सेल-मेम्ब्रेन कहा जाता है. इन झिल्लियों के निर्माण में स्टेरॉयड-रसायन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. साथ ही कोशिकाओं के भीतर रासायनिक सन्देशों को पहुँचाने में भी स्टेरॉयड-रसायनों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है.

कार्बन के सत्रह परमाणु एक ख़ास छल्लेदार संरचना बनाते हैं: इसमें तीन षट्कोणीय छल्ले होते हैं और एक पंचकोणीय छल्ला. इस चार छल्लों वाली संरचना को ही स्टेरॉयड छल्ला या स्टेरॉयड-रिंग का नाम दिया गया है. संसार के जितने भी स्टेरॉयड-रसायन हैं, उनकी संरचना में यह महाछल्ला

स्टेरॉयड कहलाने के लिए एक ख़ास क़िस्म की संरचना और ख़ास कार्यशैली होनी ज़रूरी है. सभी स्टेरॉयडों में, चाहे वे शरीर के भीतर बने अथवा दवा के रूप में बाहर से दिये जाएँ, चार छल्लों वाला यह महाछल्ला ज़रूर होता है.
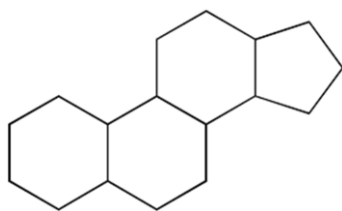
मौजूद रहता है. क़िस्म-क़िस्म के स्टेरॉयड-रसायनों के स्वरूपों में इसी महाछल्ले के इर्द-गिर्द रासायनिक परिवर्तन पाये जाते हैं.

आम तौर पर लोग स्टेरॉयड-रसायनों को दवाओं के ही रूप में जानते हैं. सच किन्तु इससे कहीं अधिक व्यापक है. ऊपर बताया जा चुका है कि क़िस्म-क़िस्म के स्टेरॉयड-रसायन पृथ्वी के हर जीवित प्राणी के भीतर सामान्य स्थिति में मौजूद हैं. इस पुस्तिका में हम फफूँदियों व पौधों में पाये जाने वाले तरह-तरह के स्टेरॉयडों पर चर्चा करने की बजाय अपना ध्यान मानव-शरीर के स्टेरॉयडों पर ही रखेंगे, क्योंकि इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इसे लिखा गया है.

मानव-शरीर की कोई भी कोशिका बिना कोलेस्टेरॉल के निर्मित नहीं हो सकती क्योंकि कोशिकीय झिल्ली के निर्माण के लिए कोलेस्टेरॉल की मौजूदगी ज़रूरी है. कोलेस्टेरोल भी एक स्टेरॉयड है. साथ ही यह शरीर के भीतर अनेक हॉर्मोनों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है. स्टेरॉयड-प्रजाति के इन हॉर्मोनों पर बात करने के लिए हमें फिर से मानव-एड्रीनल ग्रन्थियों पर वापस लौटना है.

एड्रीनल ग्रन्थियाँ स्टेरॉयड संरचना वाले अनेक हॉर्मोनों का निर्माण करती हैं, अन्य अंग जैसे पुरुषों में वृषण, स्त्रियों में अण्डाशय व आँव (प्लैसेंटा) भी यह काम करते हैं. इन स्टेरॉयड-हॉर्मोनों को मुख्य रूप से तीन प्रकारों में बाँटा गया है: ग्लूकोकॉर्टिकॉइड, मिनरैलोकॉर्टिकॉइड व सेक्स-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोन.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड व मिनरैलोकॉर्टिकॉइड का निर्माण एड्रीनल ग्रन्थियों के बाहरी हिस्से कॉर्टेक्स के भीतर होता है. सेक्स-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोन एड्रीनल में थोड़ी मात्रा में निर्मित तो होते हैं, किन्तु इनकी अधिकांश मात्रा वृषणों-अण्डाशयों में पुरुषों-स्त्रियों का शरीर बनाता है. चूँकि ग्लूकोकॉर्टिकॉइड व मिनरैलोकॉर्टिकॉइड स्टेरॉयड-हॉर्मोनों का निर्माण कॉर्टेक्स में होता है, इसलिए इनका एक दूसरा नाम कॉर्टिकोस्टेरॉयड भी होता है. (यद्यपि कॉर्टिकोस्टेरॉयड शब्द का इस्तेमाल अधिकतर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों के लिए ही किया जाता है.)

इन जटिल नामों को ध्यान से पढ़ने पर इनके कार्य का बोध थोड़ा-थोड़ा होने लगता है. मिनरैलो-कॉर्टिकॉइड यानी वह स्टेरॉयड-हॉर्मोन जिसका काम शरीर के भीतर नमक और पानी के सन्तुलन को बनाये रखना है. मिनरल

खनिज को कहा जाता है और शरीर के भीतर सोडियम-पोटैशियम-इत्यादि के लवणों के लिए भी इस शब्द का इस्तेमाल होता है. तो इस तरह से एड्रीनल कॉर्टेक्स में बनकर निकलने मिनरैलोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोन शरीर के भीतर उचित मात्रा में सोडियम-पोटैशियम व पानी को बनाये रखते हैं.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड के नाम में ग्लूकोज़ मौजूद है. ये हॉर्मोन शरीर के भीतर ग्लूकोज़-प्रोटीन-वसा के चयापचय (मेटाबॉलिज़्म) में काम करते हैं. साथ ही किसी भी प्रकार के शारीरिक-मानसिक कष्ट या तनाव में शरीर की रक्षा करने में ये महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं. सेक्स-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों का काम स्त्री-पुरुष का यौन विकास और यौनांगों की समुचित कार्यशैली विकसित करना है. स्त्रियों में मौजूद सेक्स-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोन ईस्ट्रोजेन व प्रोजेस्टेरोन कहलाते हैं एवं पुरुष में मौजूद हॉर्मोन एंड्रोजेन. इन्हीं एंड्रोजेनों में सबसे मुख्य टेस्टोस्टेरोन है.

जिन हॉर्मोनों या हॉर्मोनों से मिलती-जुलती दवाओं को अमूमन आम जनता स्टेरॉयड कहती या समझती है, वे ज़्यादातर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-समूह के ही सदस्य हैं. मिनरैलोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों का दवाओं के रूप में इस्तेमाल

इस चित्र में दिखाये गये छहों रसायनों की संरचना देखें. सभी में वह चार छल्लों वाला महाछल्ला मौजूद है, इसलिए ये सभी स्टेरॉयड ही हैं. ये सभी स्टेरॉयड हम-सभी के भीतर हैं, हमारा शरीर ही इन्हें बनाता है. इनमें से पहले दो कॉर्टिसोल व कॉर्टिकोस्टेरॉन ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-प्रजाति के हैं. अगला सदस्य एल्डोस्टेरोन मिनरैलोकॉर्टिकॉइड है. बाक़ी बचे चार सेक्स-कॉर्टिकॉइड हैं: प्रोजेस्टेरोन व बीटा-ईस्ट्राडियॉल स्त्री-हॉर्मोन हैं एवं टेस्टोस्टेरोन पुरुष-हॉर्मोन.
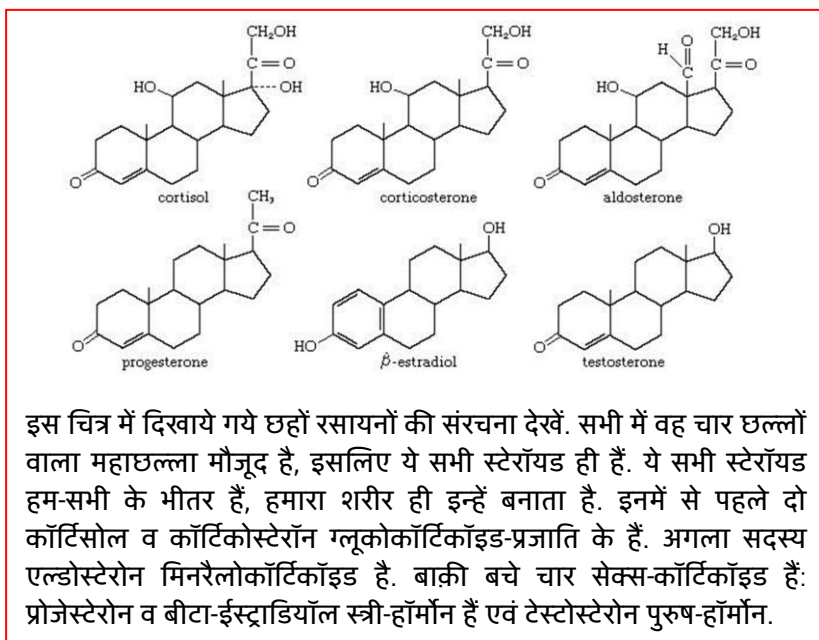
बहुत कम व ख़ास रोगों में ही किया जाता है. सेक्स-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोन गर्भनिरोधक-गोलियों के रूप में या एनाबोलिक कारणों से रोगियों में इस्तेमाल किये जाते हैं.

गर्भनिरोधक-गोलियाँ स्त्री-शरीर के भीतर ऐसे कुछ टेम्परेरी हॉर्मोनल बदलाव लाती हैं, जिनके कारण गर्भ नहीं ठहरता. सामान्य रूप से युवा स्त्री-देह के भीतर हर महीने गर्भाधान की तैयारी शरीर करता रहता है. लेकिन ऐसा न हो, इसके लिए अनेक हॉर्मोनल गोलियाँ व इम्प्लांट विकसित किये गये हैं, जिनके उचित सेवन से गर्भाधान रोका जा सकता है. इन गोलियों-इम्प्लांटों में मौजूद रसायन सेक्स-कॉर्टिकॉइड स्टेरॉयड-हॉर्मोन ही होते हैं.

वे एनाबोलिक कारण क्या हैं, जिनमें स्टेरॉयड-रसायनों का इस्तेमाल दवा के रूप में किया जाता है? एनाबोलिज़्म का अर्थ शरीर का निर्माण है. एनाबोलिक वजहों से इस्तेमाल होने वाले स्टेरॉयड-रसायन वे हैं, जो पुरुष-हॉर्मोन एंड्रोजेन हैं. पुरुष के शरीर के भीतर मज़बूत कद-काठी, मांसपेशियों, हड्डियों व रक्त-कोशिकाओं के निर्माण में टेस्टोस्टेरोन-जैसे एंड्रोजेन बड़ा योगदान देते हैं. तो ऐसे में वैज्ञानिकों ने अनेक ऐसे एंड्रोजेन-रसायन विकसित किये हैं, जिनके सेवन से शरीर को शक्ति मिलती है, हड्डियाँ-मांसपेशियाँ मज़बूत होती हैं और अस्थिमज्जा (बोन-मैरो) के बेहतर काम करने से हीमोग्लोबिन बढ़ता है. ऐसे में इन रसायनों को दवाओं के रूप में प्रयोग करने के मेडिकल दिशानिर्देश ख़ास परिस्थितियों में हैं, अन्यथा नहीं.

मान लीजिए किसी व्यक्ति की अस्थि-मज्जा में ख़ून समुचित मात्रा में नहीं बन रहा. या फिर किसी दूसरे व्यक्ति में कैंसर अथवा एड्स के कारण मांसपेशियाँ क्षय होती जा रही हैं. अथवा कोई बच्चा बहुत छोटे कद का है. ये वे कुछ परिस्थितियाँ हैं, जिनमें सोच-विचार के बाद डॉक्टर रोगियों को एनाबोलिक स्टेरॉयड देते हैं ताकि उनमें सुधार लाया जा सके. लेकिन इन स्टेरॉयड-रसायनों के प्रयोग के समय कुछ नकारात्मक प्रभावों को भी दिमाग़ में रखना ज़रूरी हो जाता है.

हम जान चुके हैं कि एनाबोलिक स्टेरॉयड पुरुष-स्टेरॉयड-हॉर्मोनों की संरचना व कार्यशैली लिये हैं. ज़ाहिर है कि तब इनके सेवन से शरीर के भीतर पुरुषोचित बदलाव आएँगे. ऐसे में किसी महिला में इन स्टेरॉयडों के इस्तेमाल के समय और अधिक सावधान रहने की ज़रूरत होती है. अन्यथा चेहरे व शरीर पर बाल उगना, आवाज़ का मोटा होना व त्वचा पर मुहाँसे निकलना-

जैसे प्रतिकूल प्रभाव पैदा हो सकते हैं. इसके अलावा ब्लड-प्रेशर व कोलेस्टेरोल बढ़ सकते हैं व हृदय, वृक्कों (किडनी) एवं यकृत (लिवर) को भी हानि पहुँच सकती है. इन सब बातों के बावजूद अवैध रूप से इन सेक्स-कॉर्टिकॉइड दवाओं का प्रयोग दुनिया-भर के एथलीट खेलकूद में अपने प्रदर्शन की बेहतरी के लिए किया करते हैं.

मिनरैलोकॉर्टिकॉइड व सेक्स-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोन भी इस पुस्तिका के केन्द्रबिन्दु नहीं हैं. यहाँ पर मुख्य रूप से बात ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोन की ही होनी है. इन्हें ही डॉक्टर कॉर्टिकोस्टेरॉयड और आम जन केवल स्टेरॉयड के नाम से कहता-जानता है. इन्हीं का इस्तेमाल ढेरों रोगों में संसार-भर के डॉक्टर करते आये हैं. इन्हीं के साइड-इफ़ेक्टों से आतंकित होने के कारण तरह-तरह की भ्रान्तियाँ भी लोगों में फैली हैं. आगे हम-लोग इन्हीं ग्लूको-कॉर्टिकॉइड-रसायनों थोड़ा विस्तार से बात करेंगे.

शरीर तनाव में है: अब क्या हो?

मानव-जीवन नित्य तनाव (स्ट्रेस) से साक्षात्कार किया करता है. यह तनाव तरह-तरह का हो सकता है. कोई शारीरिक रोग भी तनाव पैदा कर सकता है, मानसिक रोग भी. कोई व्यक्तिगत दुर्घटना भी तनाव ला सकती है, कोई सामाजिक समस्या भी. किसी भी तनाव के पैदा होने पर शरीर के सामने दो ही विकल्प होते हैं: जूझो या फिर भागो (फ़ाइट ऑर फ्लाइट) .

तनाव के समय मनोस्थिति व शारीरिक क्रियाएँ वैसी नहीं रखी जा सकतीं, जैसी सामान्य समय में रखी जाती हैं. ज़ाहिर है, ऐसे में शरीर को कुछ ख़ास 'रासायनिक' तैयारियाँ करनी पड़ती हैं. इन तैयारियों में जो हॉर्मोन प्रमुख भूमिका निभाते हैं, वे एड्रीनल ग्रन्थियों के कॉर्टेक्स से निकलते हैं और इन्हें ग्लूकोकॉर्टिकॉइड कहा जाता है.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड मानव-शरीर के तनावरोधी हॉर्मोन हैं. यदि ये न निर्मित हों, तो मनुष्य का तनाव उसकी जान ले ले. लेकिन कुदरत ने इन हॉर्मोनों की व्यवस्था करके मानव को तनाव झेलने के लिए तैयार किया है. तनाव की परिस्थिति पैदा होने पर मस्तिष्क का हिस्सा हायपोथैलेमस मास्टर-ग्रन्थि पिट्यूटरी को उत्तेजित करता है और पिट्यूटरी ग्रन्थि फिर एड्रीनल ग्रन्थि को. फलस्वरूप एड्रीनल ग्रन्थियों से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों का पहले निर्माण व फिर रक्तस्राव होता है.

ऐसा नहीं है कि सामान्य तनावहीन स्थिति में मनुष्य के शरीर के भीतर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड बनते ही नहीं. वे नित्य बनते और ख़ून में छोड़े जाते रहते हैं. प्रतिदिन एक दैनिक उतार-चढ़ाव के क्रम में इन हॉर्मोनों का स्तर ख़ून में बढ़ता-घटता रहता है. यानी हर सामान्य मनुष्य के रक्त में ग्लूकोर्टिकॉइड-स्तर की एक सर्केडियन रिद्म होती है. सुबह के समय सामान्य मनुष्य के भीतर ग्लूकोर्टिकॉइड-स्तर अधिकतम होता है और शाम के समय न्यूनतम.

हम जान चुके हैं कि सभी स्टेरॉयड-हॉर्मोनों का निर्माण जिस रसायन से शुरू होता है, वह कोलेस्टेरॉल है. कोलेस्टेरोल स्वयं एक स्टेरॉयड ही है. शरीर के अंगों में उसकी संरचना में तमाम जैवरासायनिक बदलाव होते हैं जिसके कारण फिर भिन्न-भिन्न स्टेरॉयड-हॉर्मोन बनते हैं.
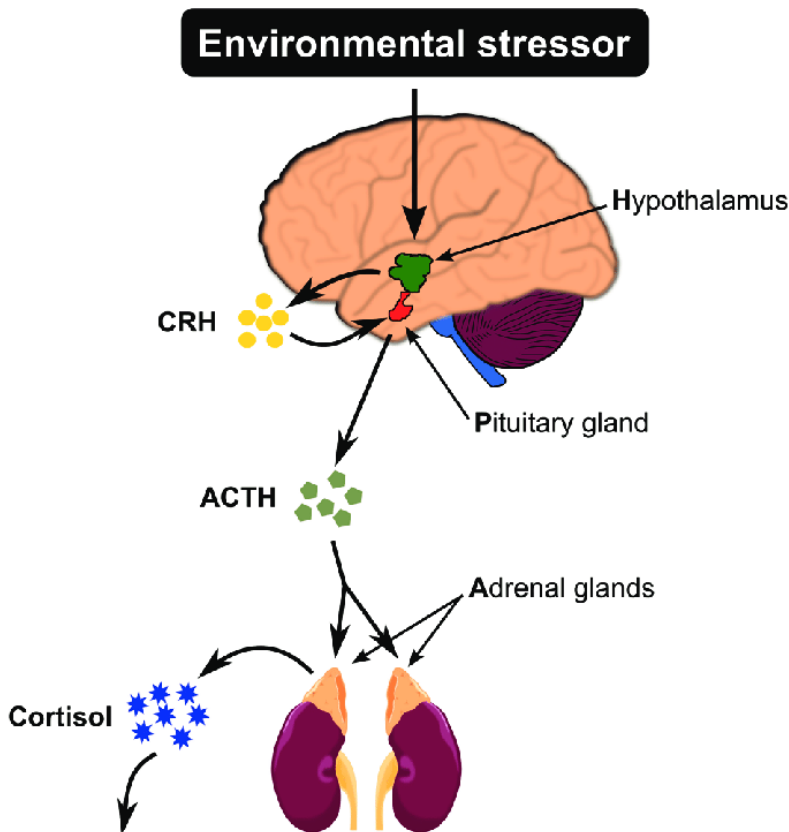
मानव-शरीर की कोशिकाओं के भीतर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दाखिल होते हैं और वहाँ अपने रिसेप्टरों से जुड़ जाते हैं. ये रिसेप्टर भी रासायनिक अणु ही हैं, जो ख़ास ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-अणुओं से जुड़ने के लिए कोशिकाओं के भीतर मौजूद होते हैं. इनसे जुड़ने के बाद ग्लूकोकॉर्टिकॉइड अपने कामों को कोशिकाओं के भीतर अंजाम देना शुरु करते हैं. मुख्य रूप से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड द्वारा शरीर में लाये गये बदलाव दो प्रकार के होते हैं:

1. मेटाबॉलिक यानी चयापचय क्रियाओं में बदलाव.

2. प्रतिरक्षा-तन्त्र में बदलाव.

मेटाबॉलिक या चयापचय क्रियाओं के होने वाले बदलाव ग्लूकोज़-वसा-प्रोटीन से सम्बन्धित हैं. ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों का प्रयास ख़ून में ग्लूकोज़ का स्तर बनाये रखना होता है. व्यक्ति जब खाली पेट होता है, तो इन हॉर्मोनों का भी ग्लूकोज़-स्तर सामान्य बनाये रखने में योगदान होता है. अन्यथा अगर इन हॉर्मोनों की अनुपस्थिति में ख़ून का ग्लूकोज़स्तर गिरता जा सकता है और व्यक्ति मरणासन्न हो सकता है. ग्लूकोज़ का रक्त-स्तर सामान्य रखने के लिए ग्लूकोकॉर्टिकॉइड शरीर के तमाम अंगों में भाण्डारित ग्लायकोजन, वसा व प्रोटीन को तोड़ते हैं एवं इसके माध्यम से ग्लूकोज़ का निर्माण करते हैं.

साथ ही ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों की कोशिश रहती है कि ख़ून में सामान्य रखी ग्लूकोज़ की मात्रा को शरीर की कोशिकाएँ अधिक न इस्तेमाल कर सकें. जानते हैं ऐसा क्यों है? क्योंकि ख़ून में मौजूद ग्लूकोज़ को सबसे पहले मस्तिष्क के लिए बचा कर रखना है. मस्तिष्क ग्लूकोज़ के सिवा किसी अन्य रसायन का सामान्यतया प्रयोग नहीं करता. ऐसे में शरीर के अन्य सभी अंगों को ग्लूकोज़-इस्तेमाल के लिए मस्तिष्क के बाद ही वरीयता मिलनी चाहिए. इसीलिए ग्लूकोकॉर्टिकॉइड रक्त में ग्लूकोज़ की सामान्य मात्रा तो बनाये रखते हैं किन्तु अन्य अंगों को इस ग्लूकोज़ को इस्तेमाल करने से रोकते भी हैं.

हम जान चुके हैं कि ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोनों की मुख्य भूमिका तनाव के दौरान है. तनाव के अर्थ में हम अमूमन बड़ी घटनाओं को ही शामिल करते हैं. लेकिन मान लीजिए किसी व्यक्ति को कुछ घण्टों खाना न मिले, तो शरीर के लिए यह भी एक तनाव की ही स्थिति है. शरीर यह नहीं कर सकता कि वह बड़े तनावों को ही तनाव माने और छोटी घटनाओं को नज़र-अंदाज़ करे. आसपास हो रहे हर छोटे-बड़े बदलाव के प्रति उसे संवेदनशील रहना होता है, ताकि रक्षा के लिए उचित क़दम उठा सके.

सुबह उठने पर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोनों का स्तर क्यों सर्वाधिक होता है: ऊपर बताये मेटाबॉलिक बदलावों को ध्यान में रखकर यह बात भी समझी जा सकती है. सुबह व्यक्ति भूखा होता है. रात में लिये भोजन को काफी समय बीत चुका होता है. ख़ून में ग्लूकोज़ का स्तर गिर रहा होता है. ऐसे में अन्य कई हॉर्मोनों के साथ ग्लूकोकॉर्टिकॉइड भी ख़ून में छोड़े जाते हैं, ताकि इस छोटी 'तनाव की स्थिति' से निबटा जा सके. ग्लूकोज़ का स्तर सामान्य रखा जा सके, ताकि वह मस्तिष्क के लिए हर हाल में उपलब्ध रहे.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड शरीर में मौजूद वसा व प्रोटीन को तोड़ते हैं और उनके खण्डित उत्पादों से भी ग्लूकोज़ बनाने का प्रयास करते हैं. साथ ही वे शरीर में सोडियम का संरक्षण करने की कोशिश करते हैं ताकि कम मात्रा में यह पेशाब में निकाला जाए. इसके विपरीत ये पेशाब में पोटैशियम का उत्सर्जन बढ़ा देते हैं. अस्थिमज्जा से ख़ून में नयी लाल व श्वेत रक्त-कोशिकाएँ भी छोड़ी जाती हैं.

अगर आप ध्यानपूर्वक सोचेंगे तो समझ जाएँगे कि शरीर के भीतर ख़ून में ग्लूकोज़ व सोडियम की सामान्य मात्रा बनाये रखना प्रतिकूल परिस्थितियों में क्यों ज़रूरी है. तनाव-आपदा-प्रतिकूलन एक समस्या है और समस्या के दौरान शरीर को कुछ बदलाव करने पड़ते हैं. इन्हीं ढेरों बदलावों में से अनेक को अंजाम ये ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोन देते हैं ताकि समस्या के दौरान शरीर को कोई बड़ी राशन-रसद सम्बन्धी परेशानी न हो.

इस पुस्तिका में चर्चा के दौरान हम ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों द्वारा शरीर के भीतर किये जाने वाले जटिल बदलावों पर बात नहीं कर सकते. बस यहाँ इतना जानना आवश्यक होगा कि ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोन शरीर में मौजूद वसा और प्रोटीन का विखण्डन कराते हैं, ताकि उनसे भी ग्लूकोज़ बनाया जा सके. साथ ही ये हॉर्मोन वसा का शरीर में पुनर्वितरण यानी रीडिस्ट्रीब्यूशन भी कराते हैं. हाथों-पैरों की चर्बी वहाँ से हटकर धड़ व चेहरे पर जमा कर दी जाती है.

मस्तिष्क में जन्मने वाली भावनाओं, स्मृतियों, बौद्धिक क्षमता व अन्य ढेरों कार्य ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों से तरह-तरह से प्रभावित होते हैं. तीव्र भावनाओं से सम्बन्धित घटनाओं की यादें ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों के कारण सहेजी जाती हैं, जबकि अन्य यादों को भुला दिया जाता है. लेकिन दीर्घकाल तक अधिक मात्रा में ग्लूकोकॉर्टिकॉइडों के कारण स्मृति व ध्यान देने की क्षमता कम भी होने लगती है.

गर्भस्थ भ्रूण के विकास में भी ग्लूकोकॉर्टिकॉइड महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. भ्रूण के मस्तिष्क व अनेक अंगों के विकास में इनका योगदान होता है. फेफड़ों के सन्दर्भ में तो इनकी चर्चा के बिना बात अधूरी रह जाती है: इस बारे में आगे इसी पुस्तिका में विस्तार से समझाया गया है.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों का दूसरा प्रमुख प्रभाव प्रतिरक्षा-तन्त्र पर पड़ता है. इन रसायनों के कारण प्रतिरक्षा की धार कुन्द पड़ती है. प्रतिरक्षक कोशिकाएँ व रसायन अपना काम ठीक से नहीं कर पाते. इन्फ्लेमेशन जो कि प्रतिरक्षा-तन्त्र की गतिविधि के कारण ही जन्म लेता है, भोथरा पड़ने लगता है. इन सब कामों की वजह भी तनाव के समय प्रतिरक्षा को नियन्त्रित रखना है. यदि तनाव-क्रिया का शरीर पर बुरा असर पड़ता है, तो तनाव के प्रति अत्यधिक प्रतिक्रिया भी उतनी ही हानिकारक हो सकती है. इसलिए ग्लूकोकॉर्टिकॉइड प्रतिरक्षक-प्रतिक्रिया को घटा कर तनाव से जूझने में एक प्रकार से मदद ही करते हैं.

मानव-शरीर में बनने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोन कॉर्टिसॉल के नाम से जाना जाता है. जैसा कि हम जान चुके हैं, इसका निर्माण एड्रीनल ग्रन्थियों के भीतर होता है. ये ग्रन्थियाँ कॉर्टिसॉल को बनाकर ख़ून में छोड़ देती हैं, जहाँ से यह शरीर के तमाम अंगों में प्रवेश करके कोशिकाओं पर अपने तरह-तरह के प्रभाव दिखाता है. कॉर्टिसॉल का स्तर सुबह के समय ख़ून में सर्वाधिक और शाम को सबसे कम होता है.

Cortisol
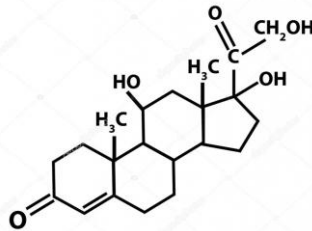
जूझो या भागो!

रामचन्द्रन की छह वर्षीया नातिन बेला डिस्कवरी चैनल देखने में मग्न है, जहाँ शेरनियों का समूह ज़ेब्रा-झुण्ड पर आक्रमण करने जा रहा है. ज़ेब्रा शिकार हैं, शेरनियाँ शिकारी हैं. ऐसे में आक्रमण से बचाव के दौरान इन शाकाहारी जन्तुओं के पास दो ही विकल्प हैं: या तो वे सामूहिक रूप से शेरनियों के समूह का मुक़ाबला करें, अथवा चारागाह से सरपट पूरी ताकत लगाकर भाग निकलें. जूझने और भागने में बहुधा ज़ेब्रा भागने के विकल्प को ही चुनते हैं.

किसी भी आपात्काल के दौरान जब जूझने या भागने की स्थिति आती है, तो मनुष्यों व अनेक जीवों के भीतर मौजूद एड्रीनल ग्रन्थियाँ सक्रिय हो जाती हैं. सबसे पहले मस्तिष्क के हिस्से एमिग्डैला व हाइपोथैलमस में गतिविधियाँ होती हैं और फिर वहाँ से सन्देश पास की पिट्यूटरी ग्रन्थि में जाते हैं. पिट्यूटरी से फिर एसीटीएच (एड्रीनोकॉर्टिकोट्रॉपिक हॉर्मोन) का स्राव होता है. एड्रीनल ग्रन्थियाँ भी उत्तेजित होती हैं और अपने भीतर कुछ ख़ास हॉर्मोनों का निर्माण व स्राव करने लगती हैं. इन हॉर्मोनों में एक होता है कॉर्टिसोल, जो कि एक ग्लूकोकॉर्टिकॉइड है और दूसरा होता है एड्रीनलीन.

एड्रीनलीन का तनावपूर्ण परिस्थितियों में निकलना जागरूक अँगरेज़ीदाँ लोगों का मुहावरा बन चुका है. यह हॉर्मोन-संज्ञान का रिसकर शब्द-बोध में प्रवेश कर जाना है. जहाँ एड्रीनलीन निकल रहा है, वहाँ ऊर्जा फूट रही है. वहाँ उत्तेजना है, संघर्ष है. वहाँ जूझना है अथवा भागना है.

लेकिन एड्रीनलीन की ही तरह एड्रीनल ग्रन्थियाँ ऐसी परिस्थिति में कॉर्टिसॉल जैसे ग्लूकोकॉर्टिकॉइड को भी बनाती व ख़ून में छोड़ती हैं. कॉर्टिसॉल भी जूझने या भागने में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाला हॉर्मोन है. जूझने और भागने की ऐसी हालत में शरीर का तापमान चढ़ने लगता है, हृदयगति व श्वासगति बढ़ने लगती हैं.

मुँह सूखता है, चेहरा लाल हो जाता है, आँखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं. पाचन थमने लगता है. ये सब उन गतिविधियों की सूची है, जिनके माध्यम से एड्रीनलीन-कॉर्टिसॉल जैसे हॉर्मोन शरीर को जूझने अथवा भागने के लिए तैयार करते हैं.

डॉक्टर साहब...! आप मुझे स्टेरॉयड क्यों दे रहे हैं?

यह जानकारी पाना एक बात है कि शरीर के भीतर नित्य ग्लूको-कॉर्टिकॉइड-हॉर्मोनों का निर्माण व स्राव होता है, लेकिन बात तब बदल जाती है, जब रोगी यह जानता है कि डॉक्टर उसे उसके रोग के लिए ग्लूकोकॉर्टिकॉइड लिख रहे हैं. ऐसे में कई रोगी हिचकिचाहट (अथवा कई बार तो विश्वास के साथ) पूछ भी लेते हैं कि उन्हें 'स्टेरॉयड-दवा' क्यों लिखी जा रही है?

पिछले वर्ष रामचन्द्रन की छोटी बेटी विधि को अचानक चेहरे पर लाल चकत्तों के साथ बुख़ार आना शुरू हुआ. साथ ही फिर शरीर में कमज़ोरी बढ़ने लगी. कई डॉक्टरों को दिखाने के बाद जब कुछ सटीक निष्कर्ष न निकला, तो विधि को लेकर ये लोग एक उच्च संस्थान में पहुँचे. वहाँ मुआयने और जाँचों के बाद यह बताया गया कि विधि को एक ऑटोइम्यून रोग डर्मैटोमायोसाइटिस है, जिसमें त्वचा व मांसपेशियों पर व्यक्ति का अपना ही प्रतिरक्षा-तन्त्र आक्रमण करने लगता है. इस अन्धे 'आत्म-आक्रमण' के कारण त्वचा पर ये लाल चकत्ते निकलते हैं और मांसपेशियाँ कमज़ोर पड़ने लगती हैं. इसी कमज़ोरी के कारण विधि को उठने-बैठने में, बालों में कंघी करने में और यहाँ तक कि पानी निगले में समस्या आने लगी थी. ऐसे में डॉक्टर ने उसे जो उपचार शुरू किया, वह ग्लूकोकॉर्टिकॉइड ही था.

डर्मैटोमायोसाइटिस के लिए विधि को जिस मात्रा में ग्लूकोकॉर्टिकॉइड डॉक्टर दे रहे हैं, वह साठ मिलीग्राम है. इस डोज़ को देखकर भी रामचन्द्रन व उनका परिवार आश्चर्यचकित है. इतनी अधिक मात्रा में स्टेरॉयड? क्या सचमुच रोगी को इस दवा की इतनी ज़रूरत है?

आम तौर पर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड का प्रयोग डॉक्टर उन रोगों में करते हैं, जो प्रतिरक्षा-तन्त्र की 'अनुशासनहीनता' के कारण होते हैं. इस अनुशासनहीनता को समझने से पहले हमें यह जानना ज़रूरी है कि अनुशासित प्रतिरक्षा-तन्त्र किस तरह काम करता है. अनुशासित प्रतिरक्षा-तन्त्र अपने और पराये में भेद करना जानता है; उसे पता होता है कि शरीर के भीतर उपस्थित रक्तकोशिका और मलेरिया-परजीवी में अन्तर किस तरह

पहचानना है. कैसे स्वस्थ कोशिका व कैंसर-कोशिका में फर्क करना है. किस तरह से विषाणुग्रस्त कोशिका एवं स्वस्थ कोशिका को अलग-अलग समझना है. और फिर जो अपने नहीं हैं अथवा रोगग्रस्त हैं, उन्हें नष्ट कर देना है.

प्रतिरक्षा-तन्त्र जब अनुशासनहीन होता है, तो वह शरीर के भीतर मौजूद अपनों व पराये जीवाणुओं-विषाणुओं का भेद भूल जाता है. प्रतिरक्षा-तन्त्र की ये गुमराह कोशिकाएँ अपने ही शरीर की अन्य साधारण कोशिकाओं पर आक्रमण आरम्भ कर देती हैं. इस तरह से मनुष्य के भीतर ऑटोइम्यून रोग (स्वप्रतिरक्षक रोग) का जन्म होता है. ये ऑटोइम्यून रोग कई प्रकार के होते हैं. ये किसी एक अंगविशेष को भी हानि पहुँचा सकते हैं और सम्पूर्ण शरीर के अनेक अंगों को भी. विधि को जो ऑटोइम्यून रोग डर्मैटोमायोसाइटिस हुआ है, उसमें मुख्य रूप से मांसपेशियाँ व त्वचा पर बिगड़ी हुई प्रतिरक्षा-कोशिकाएँ आक्रमण करती हैं और वहीं रोगी में लक्षण उत्पन्न होते हैं.

ऑटोइम्यून रोगों से लड़ने के लिए आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाओं का प्रयोग करता है. इन दवाओं के कारण, जैसा कि हम पहले जान चुके हैं, प्रतिरक्षा की धार कुन्द पड़ जाती है. प्रतिरक्षक कोशिकाएँ व उनसे निकलने वाले रसायन अपना आक्रमण ढंग से नहीं कर पाते. नतीजन मरीज़ों को अपने लक्षणों से राहत मिलती है और उसका ऑटोइम्यून रोग नियन्त्रण में आ जाता है.

यहाँ पर शरीर के प्रतिरक्षा-तन्त्र व अन्तःस्रावी तन्त्र के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात जाननी ज़रूरी है. प्रतिरक्षा-तन्त्र की ढेरों कोशिकाएँ, ढेरों रसायन व अन्तःस्रावी तन्त्र के ढेरों हॉर्मोन केवल एक कार्य या कुछ ही कार्य नहीं करते. वे अनेक जगहों पर अनेक ढंग के कार्य करते हैं. यह गुण प्लियोट्रॉपी कहलाता है: एक साथ अनेक कार्य कर सकने की क्षमता. और ऑटोइम्यून रोगों व उनके ग्लूकोकॉर्टिकॉइड उपचार को समझने के लिए इस प्लियोट्रॉपी को समझना बहुत ज़रूरी हो जाता है.

मान लीजिए आपके घर में कोई एक व्यक्ति रहता है. वह किसी दफ़्तर में नौकरी करता है, चार पैसे कमा कर लाता है. सुबह घर में बच्चों को पढ़ाता है. शाम को प्रेमिका से मिलता है, रात को गलत संगति वाले दोस्तों से भी. आपको यह सब पता है. आप चाहते हैं कि उसकी गलत लोगों से चल रही मित्रता के कारण उससे आप पिण्ड छुड़ाएँ. इसलिए एक दिन आप उसे घर से निकाल देते हैं. अब उसकी ख़राब मित्रता से तो आप छुटकारा मिल गया,

लेकिन बच्चों को मिल रही उसकी देखभाल से भी आप हाथ धो बैठे. साथ ही उसने अपने पैसे बन्द कर दिये. इस तरह से आपके एक निर्णय से आपको केवल लाभ ही नहीं हुआ, कुछ मामलों में हानि भी हुई.

आपने यह हानि-लाभ का अनुमान-आकलन पहले से कर रखा था. वह व्यक्ति पैसे कमा कर न दे, चाहे बच्चों को न पढ़ाए. लेकिन घर तक आते उसके बुरे मित्र परिवार पर अधिक दुष्प्रभाव डाल रहे थे. उनके कारण बच्चे-बड़े, सभी ग़लत ढंग से प्रभावित हो रहे थे. ऐसे में इस व्यक्ति से छुटकारा पाना ही एकमात्र हितकारी विकल्प था. सम्पूर्ण हित को देखते हुए यही करना सबसे सही काम था.

प्रतिरक्षा-तन्त्र को भी इसी तरह समझिए. वह शरीर के भीतर मौजूद हमारे सेना है, जो ढेरों आक्रमणकारियों से हमारी रक्षा करती है. इसीलिए हम स्वस्थ बने रहते हैं. लेकिन फिर कुछ लोगों में यही सेना अपने ही निर्दोष नागरिकों को सताने लगती है, उन्हें मारने लगती है. ऐसा सेना के सभी सैनिक नहीं करते, कुछ ही अराजक करते हैं. लेकिन उन्हीं कुछ सैनिकों के कारण शरीर में ऑटोइम्यून रोग पैदा हो जाता है.

अब डॉक्टर को प्रतिरक्षक सेना से अस्त्र ले लेने हैं. सैनिकों की मारक क्षमता पंगु कर देनी है. सैनिकों को ही नष्ट कर देना है. लेकिन यह सब करते समय अधिकांश अच्छे सैनिकों व कुछ बुरे सैनिकों का अन्तर समझना भी है. केवल बुरे सैनिकों के ख़िलाफ़ कार्यवाही करनी है. अच्छे सैनिकों को अपना काम करने देना है. जिन्होंने व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ा और जो अब भी उसके शरीर की रक्षा में डटे हैं, उनके विरोध में क्यों जाया जाए भला!

डॉक्टर ऑटोइम्यून रोगी को ग्लूकोकॉर्टिकॉइड देते हैं. वे हॉर्मोन-अस्त्र चलाते हैं ताकि बुरे सैनिक मर जाएँ अथवा शरीर के विरुद्ध काम न कर पाएँ. लेकिन ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोन प्लियोट्रॉपी का गुण रखते हैं. वे केवल बुरे सैनिकों को ही पंगु नहीं बनाते, केवल उन्हें ही नहीं मारते. वे अच्छे सैनिकों का भी काम तमाम कर देते हैं, उनपर भी हॉर्मोन की गाज गिरती है. इस तरह से ऑटोइम्यून रोग तो नियन्त्रित होता है, लेकिन प्रतिरक्षा-तन्त्र के कमज़ोर होने से कई अन्य समस्याओं के पैदा होने की आशंका हो जाती है. अपने ही शरीर के भीतर उपस्थित सच्चे-झूठे सैनिकों में भेद न कर पाने के कारण और दोनों के ख़िलाफ़ एक-जैसा क़दम उठाने के कारण यह-सब होता है.

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का अपनी दवाओं को अधिक स्पेसिफिक न बना पाने की समस्या केवल ऑटोइम्यून रोगों के उपचार तक सीमित नहीं. अनेक अन्य बीमारियों में भी यह समस्या सामने आती है और डॉक्टर-रोगी इससे रू-ब-रू होते हैं. मान लीजिए किसी व्यक्ति को न्यूमोनिया हुआ. फेफड़ों के इस संक्रमण के लिए डॉक्टर ने उसे एंटीबायटिक लिखी. एंटीबायटिक सेवन से उसे लाभ हुआ ; न्यूमोनिया के लक्षण ठीक होने लगे. लेकिन फिर उसे एंटीबायटिक के कारण दस्त लगने लगे. क्यों? क्योंकि उसी एंटीबायटिक ने न्यूमोनियाकारक जीवाणुओं के साथ-साथ आँतों में मौजूद हितकारी जीवाणुओं को भी मार दिया. कारण? यह एंटीबायटिक हानिकारी-हितकारी जीवाणुओं में अन्तर न कर सकी. क्यों? क्योंकि जिन पहचानों के कारण यह एंटीबायटिक अच्छे-बुरे जीवाणुओं को चीन्हती है, वे दोनों में मौजूद हैं. ठीक उसी तरह जिस तरह किसी सैनिक को यह बताया जाए कि सामने झाड़ी में जो पीली टोपी लगाये है, उसे ही मारना है क्योंकि वह हमारा दुश्मन है. लेकिन वहाँ झाड़ी में दो लोग पीली टोपी लगाये हैं. एक मित्र भी उसे धारण किये है. अब ऐसे में एंटीबायटिक-सैनिक दोनों पीली टोपीधारकों को मार देता है. इस तरह से एक शत्रु को मारने की उपलब्धि हमें एक मित्र को खो देने के साथ मिलती है.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाएँ कई तरह से रोगियों में दी जाती हैं. गोलियों के रूप में मुँह से, इंट्रावीनस रास्ते से शिरा में प्रवेश कराके, त्वचा पर क्रीम-लोशन के रूप में, इनहेलरों द्वारा भाप के रूप में अथवा कई बार मलद्वार के रास्ते एनीमा के रूप में-- अनेक विधियों से इन्हें शरीर में प्रवेश कराया जाता है. अलग-अलग रोगियों में और अलग-अलग रोगों में उनकी मात्रा भी एक नहीं होती. कभी किसी में न्यून, किसी भी मध्यम तो किसी में उच्च डोज़ की आवश्यकता पड़ती है. यह कैसे तय हो कि किस रोगी में कितनी मात्रा दी जाये? इसका निर्णय रोगी के वज़न, उसके अन्य गुणधर्म के अलावा इस बात पर भी निर्भर करता है कि रोग का प्रभाव किस अंग पर है और उसका महत्त्व शरीर के लिए कितना है. त्वचा के दानों, छालों, चकत्तों के लिए अमूमन न्यून डोज़ से अथवा बहुधा क्रीम-लोशन इत्यादि से काम चलता है, जबकि गुर्दों-फेफड़ों-मस्तिष्क जैसे महत्त्वपूर्ण और बड़े अंगों के लिए उच्च डोज़ की आवश्यकता पड़ती है, जिए इंट्रावीनस देना पड़ सकता है.

रामचन्द्रन जानना चाहते हैं कि विधि को उच्च डोज़ में ग्लूकोकॉर्टिकॉइड

क्यों दिये जा रहे हैं. अगर देने ही थे तो न्यून डोज़ से क्या काम नहीं चलाया जा सकता? तब मैं रामचन्द्रन को विधि की बीमारी की गम्भीरता समझाता हूँ. विधि की मांसपेशियों में उसका उच्छृंखल प्रतिरक्षा-तन्त्र उपद्रव मचा रहा है. इसी कारण इनमें कमज़ोरी आ गयी है. मांसपेशियों पर पड़ने वाला यह दुष्प्रभाव केवल हाथों-पैरों तक नहीं, गले की मांसपेशियों तक में है. इसी कारण वह भोजन, विशेषरूप से तरल पदार्थों को निगल नहीं पा रही. ऐसे में उसे न सिर्फ़ उच्च डोज़ में बल्कि मुँह की बजाय इंट्रावीनस ग्लूकोकॉर्टिकॉइड की आवश्यकता है, अन्यथा रोग विकराल रूप धारण कर सकता है.

मोटी बात जो ध्यान में रखनी है, वह यह कि अधिक उपयोगी आन्तरिक अंगों को जब ऑटोइम्यून रोग प्रभावित करते हैं, तब उच्च डोज़ में ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाओं की आवश्यकता पड़ती है, अन्य परिस्थितियों में कम. इस तरह से शरीर के हर अंग को प्रभावित करने वाले ऑटोइम्यून रोग को डॉक्टर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाओं से नियन्त्रित करते हैं.

ऑटोइम्यून रोगों को सम्पूर्ण रूप से ठीक कर पाना सम्भव नहीं. ऑटोइम्यून रोग किस व्यक्ति में जन्म लेगा, इसका फैसला उस व्यक्ति की जेनेटिक (आनुवंशिक) बनावट व पर्यावरण के परस्पर समन्वय से तय होता है. ऐसे में संसार में ऐसी कोई दवा नहीं, जो जन्म ले चुके ऑटोइम्यून रोग को जड़ से समाप्त कर दे. हाँ, प्रतिरक्षा-तन्त्र का शमन करके दवाएँ ऑटोइम्यून रोगों पर लगाम अवश्य लगा लेती हैं.

अब लेकिन ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाओं को भी लगातार लम्बे समय तक देना डॉक्टर के लिए सम्भव नहीं होता. कारण कि प्रतिरक्षा-तन्त्र को इन हॉर्मोनों से दबाये रखने के कारण क़िस्म-क़िस्म के संक्रमणों का ख़तरा तो बढ़ता ही है, साथ ही शरीर के अंगों पर अन्य दुष्प्रभाव भी देखने को मिल सकते हैं. इसी कारण शीघ्र ही आगे डॉक्टर विधि को भी ऐसी दवाएँ देनी शुरू करेंगे, जिनके कारण ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाओं की मात्रा को घटाया और फिर बन्द किया जा सकेगा. इन दवाओं को डॉक्टर स्टेरॉयड-स्पेयरिंग एजेंट अथवा स्टेरॉयड-मुक्ति औषधियाँ कहते हैं. ऐसी तमाम दवाएँ हैं, जो विधि जैसे रोगियों को ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दवाओं से मुक्ति दिला सकती हैं.

मैं रामचन्द्रन को समझा रहा हूँ कि प्लियोट्रॉपी के कारण ग्लूको-कॉर्टिकॉइड हॉर्मोन रोगी को लाभ भी पहुँचाता है और उसी के कारण उसमें

प्रतिकूल प्रभावों का ख़तरा भी रहता है. सभी प्रतिकूल प्रभाव एक मेल के नहीं होते. सभी बराबर महत्त्व के नहीं माने जा सकते. लेकिन सभी के बारे में थोड़ा-थोड़ा जानना आवश्यक हो जाता है.

> ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोनों के प्रभाव व दुष्प्रभाव दोनों, दो मुख्य प्रकारों में बाँटे जा सकते हैं.: मेटाबॉलिक प्रभाव एवं प्रतिरक्षीय प्रभाव. मेटाबॉलिक प्रभाव जैसे रक्त में शर्करा का स्तर बढ़ना. यही जब बहुत अधिक बढ़कर डायबिटीज़ का रूप ले ले, तो इसे स्टेरॉयड इंड्यूस्ड डायबिटीज़ कहते हैं. प्रतिरक्षीय प्रभाव जिसके कारण प्रतिरक्षा-तन्त्र सुस्त व पंगु हो जाए. इसी से ऑटोइम्यूनिटी नियन्त्रित हो और इसी से संक्रमण होने का ख़तरा भी बढ़ जाए.

सबसे साधारण प्रतिकूल प्रभाव ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-सेवन करने पर वज़न का बढ़ना है. इस मोटापे को अधिक डोज़ अधिक दिनों तक लेने पर ज़्यादा देखने को मिलता है. इससे बचने के लिए सबसे प्रभावशाली तरीक़ा मीठी वस्तुओं से भोजन में दूरी बनाना एवं नित्य व्यायाम करना है. कार्बोहाइड्रेट का अत्यधिक सेवन करने से वह शरीर में वसा के रूप में भाण्डारित कर लिया जाता है. इसी कारण व्यक्ति मोटा होने लगता है. यह मोटापा एक ख़ास क़िस्म का होता है: इसमें चेहरे व धड़ पर अधिक वसा जमा होती है और हाथ-पैर पतले रहा करते हैं. इस तरह के चेहरे को चन्द्रमा की तरह (मून फेसीज़) कहा जाता है और जब यह स्थिति विकट हो जाती है, तो ऐसा लगता है कि कोई नींबूनुमा आकृति पतली सलाइयों पर खड़ी है (लेमन-ऑन-स्टिक अपीयरेंस). गर्दन के पीछे भैंस की तरह का एक चर्बी का कूबड़ (बफ़ैलो हम्प) निकल आता है और गर्दन की हँसुलियों के ऊपर के दोनों ओर के गड्ढे भर जाते हैं.

चर्बी के बँटवारे में बदलाव व वृद्धि के बाद ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दूसरा महत्त्वपूर्ण दुष्प्रभाव हड्डियों पर दिखा सकते हैं. हड्डियाँ इनके सेवन से कमज़ोर हो सकती हैं और उनमें फ्रैक्चर भी हो सकते हैं. इसलिए लिए आवश्यक है कि रोगी उचित मात्रा में कैल्शियम व विटामिन डी भोजन में लेते रहें तथा व्यायाम लगातार करें. (विशेषरूप से वे व्यायाम जिनमें वज़न उठाना होता है, अधिक लाभकारी होते हैं.) साथ ही धूमपान व मदिरा से परहेज़ भी आवश्यक हो जाता है. इसके अतिरिक्त कुछ रोगियों में हड्डियों के गलने की समस्या ऑस्टियोनेक्रोसिस भी उत्पन्न हो सकती है. यहाँ भी अधिक दिनों तक अधिक मात्रा में ग्लूकोकॉर्टिकॉइड का सेवन भूमिका निभाता है.

आँखों में मोतियाबिन्द ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-सेवन से पैदा हो सकता है. कभी-कभी मरीज़ों में आँख का प्रेशर (इंट्राऑक्युलर टेंशन) भी बढ़ सकता है. आँखों के पर्दों पर भी दुष्प्रभाव देखने को मिल सकते हैं. ये सभी समस्याएँ मुँह से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड लेने पर तो हो ही सकती हैं, आँखों में इनकी ड्रॉप डालने पर भी पनप सकती हैं. यही कारण है कि बिना योग्य नेत्ररोग-चिकित्सक की राय के आँखों में कोई आय-ड्राप किसी को नहीं डालनी चाहिए.

हृदय-सम्बन्धी विकार जैसे इस्कीमिक हार्ट डिज़ीज़, हार्ट फेल्योर एवं हृदय-गति की अनियमितताएँ भी ग्लूकोकॉर्टिकॉइड लेने वालों में देखने को मिल सकती हैं. मधुमेह के रोगियों का शर्करा-स्तर बढ़ सकता है और जो लगभग डायबिटीज़ के क़रीब हैं, उन्हें डायबिटीज़ हो सकती है. मांसपेशियों में कमज़ोरी आ सकती है, जिसे स्टेरॉयड-मायोपैथी कहा जाता है. उलझन, अनिद्रा, मूड में बदलाव, चिड़चिड़ापन व अन्य कई मनोविकार भी पैदा हो सकते हैं. अगर मरीज़ दर्द की दवाओं को ग्लूकोकॉर्टिकॉइड के साथ ले रहा है, तो उसे पेट में पेप्टिक अल्सर भी विकसित हो सकता है.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड शरीर के भीतर एड्रीनल ग्रन्थियाँ बनाती व छोड़ती हैं. बाहर से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोन उचित परिस्थितियों में दवा के रूप में भी दिये जाते हैं. रोगियों में बाहर से दिये जाने वाले ग्लूकोकॉर्टिकॉइड भीतर बनने वाले ग्लूकोकॉर्टिकॉइड को घटा देते हैं. बाहर से दिये गये ग्लूकोकॉर्टिकॉइड मस्तिष्क के हिस्से हायपोथैलमस व पिट्यूटरी ग्रन्थि को यह सन्देश देते हैं कि शरीर में पर्याप्त ग्लूकोकॉर्टिकॉइड मौजूद है और इसलिए इसे निर्मित करने की ज़रूरत नहीं है. इस कारण शरीर अपना ग्लूकोकॉर्टिकॉइड नहीं बनाता.

लेकिन जब कभी बाहर से दिया जाने वाला यह ग्लूकोकॉर्टिकॉइड बन्द किया जाता है, तब शरीर के सामने एक विचित्र चुनौती पैदा हो जाती है. बाहर से डॉक्टर या रोगी ने स्वयं अपना ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-सेवन रोक दिया. शरीर के भीतर ग्लूकोकॉर्टिकॉइड बन नहीं रहा था क्योंकि शरीर को तो लग रहा था कि बाहर से मिलता रहेगा. ऐसे में बाहर-भीतर दोनों प्रकार से ग्लूकोकॉर्टिकॉइड न मिलने से शरीर के भीतर इन हॉर्मोनों की बेहद कमी हो जाती है और रोगी का शरीर एक संकटपूर्ण स्थिति में पहुँच जाता है.

बाहर से दिये जा रहे ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोन को इसीलिए डॉक्टर एकदम से नहीं बन्द करते, धीरे-धीरे घटाते हुए बन्द करते हैं. ताकि शरीर को

यह सन्देश मिल जाए कि बाहर से आपूर्ति बन्द हो रही है और भीतर इसका निर्माण फिर से शुरू किया जाना चाहिए. इसके अलावा एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शरीर के भीतर बनने वाला ग्लूकोकॉर्टिकॉइड का स्तर तनाव के समय या आपात्काल में एड्रीनल ग्रन्थियाँ बढ़ा देती हैं. यानी ऐसे मौक़ों पर ये ग्रन्थियाँ अतिरिक्त मात्रा में ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-हॉर्मोन बनाती हैं. जब बाहर से डॉक्टर ये हॉर्मोन दे रहे होते हैं, तो उन्हें भी इस बात का ध्यान रखना होता है. यानी किसी भी ऑपरेशन या विशेष तनावपूर्ण स्थिति उन्हें ग्लूकोकॉर्टिकॉइड की डोज़ शरीर की एड्रीनल ग्रँथियों की तरह बढ़ानी पड़ सकती है.

इन सब प्रतिकूल प्रभावों के अलावा ग्लूकोकोर्टिकॉइड-सेवन से दौरान तरह-तरह के संक्रमण (इंफेक्शन) होने का ख़तरा रहता है. फोड़ों-फुंसियों से लेकर न्यूमोनिया-पेचिश व सम्पूर्ण देह में संक्रमण (सेप्टिसीमिया) और तपेदिक (ट्यूबरकुलोसिस) भी पनप सकते हैं. ऐसे में कोई भी सम्बन्धित लक्षण बहुत अधिक सजगता और जागरूकता की माँग करता है, ताकि समय रहते संक्रमण को उचित दवाओं से ठीक किया जा सके.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-सेवन के दौरान संक्रमणों का ख़तरा इसीलिए बढ़ जाता है क्योंकि ये हॉर्मोन प्रतिरक्षा-तन्त्र को सुस्त, भोथरा और पंगु बनाते हैं. ऐसा किये बिना ऑटोइम्यून रोगों को ठीक नहीं किया जा सकता. ऑटोइम्यूनिटी से लड़ने के लिए प्रतिरक्षा-तन्त्र को दबाया जाना तो ज़रूरी है, लेकिन फिर यही तन्त्र संक्रमणों से लड़ने में मददगार भी साबित होता है. ऐसे में इलाज कर रहे डॉक्टर के सामने विकट चुनौती प्रस्तुत हो जाती है.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हॉर्मोनों को दवा के रूप में केवल ऑटोइम्यून रोगों में दिया जाता हो, ऐसा नहीं है. जहाँ भी प्रतिरक्षा-तन्त्र की ज़्यादती से शरीर को बचाना होता है, वहाँ इनका इस्तेमाल किया जाता है. तमाम त्वचा-आँख-नाक के एलर्जी-रोगों व दमे में इनका इस्तेमाल होता है. इसके अलावा मांसपेशियों में चोट या अधिक प्रयोग के कारण पैदा हुए दर्द से निजात पाने के लिए भी इन्हें इंजेक्शन-रूप में दिया जाता है. उचित परिस्थितियों में हृदय फ़ेल होने पर भी इन्हें इंजेक्शन-रूप में दिया जाता है. उचित परिस्थितियों में हृदय फ़ेल होने पर भी इनका प्रयोग किया जाता है. तमाम कैंसरों के उपचार में भी ये काम आते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में पैदा हुई सूजन भी अनेक बार इनके प्रयोग से दूर की जाती है. अंग-प्रत्यारोपण के समय शरीर प्रत्यारोपित अंग को अस्वीकृत न कर दे, इसलिए ऐसे मरीज़ में भी इनको दिया जाता है.

इन सब प्रभावों और प्रयोगों में ग्लूकोकोर्टिकॉइड हॉर्मोनों का एक प्रयोग अलग महत्त्व का है क्योंकि उसका सम्बन्ध गर्भस्थ अपरिपक्व शिशु के फेफड़ों से है. वही प्रयोग जो मुझे फिर गालव-बेला की याद दिला रहा है, जिनकी माँ को जन्म से पहले इन हॉर्मोनों को किसी ख़ास वजह से दिया गया था. आप पानी को आज फिर से देखिए : आपको उसमें लाज दिखेगी. लज्जा का ऐसा प्रदर्शन जिसके कारण वह सिकुड़ना चाहता है न्यूनतम स्थान लेकर.

मैं पहेलियाँ नहीं बुझा रहा. बस कई बार साहित्य और विज्ञान को एक साथ एक ही जगह खड़ा देख लेता हूँ. पानी की बूँद किसी ठोस सतह पर गोलाई लिये होती है और किसी ट्यूब में पानी की सतह अवतल (कॉनकेव). ऐसा इसलिए की जहाँ हवा-जल की सरहद है, वहाँ जल के अणु परस्पर पास आकर सिकुड़कर न्यूनतम आयतन घेरना चाहते हैं. बूँद इसीलिए गोल होना चाहती है वह कम-से-कम स्थान घेरे. यह गुण दरअसल पानी का नहीं हर तरल यानी द्रव का गुण है. तेल में यह मौजूद है, दूध में भी और पारे में भी. बस तरल के घनत्व, तरल के तापमान जैसी कई बातों के कारण यह कम-से-कम स्थान घेरने का गुण अलग-अलग द्रवों में अलग-अलग हो सकता है.

विज्ञान इस तरल-गुण को पृष्ठीय तनाव के नाम से जानता है. पृष्ठ यानी सतह, तनाव जिसके कारण सतह सिकुड़ना चाहती है. पानी के बूँद किसी ठोस सतह पर रखिए. उभार लिये यह नन्हीं संरचना गोलाकार नज़र आती है. अब अगर इस पानी की बूँद में डिटर्जेंट की मिलावट होती, तो क्या होता? बूँद की यह गोलाई कुछ कम पड़ जाती. कारण कि पृष्ठीय तनाव डिटर्जेंट के कारण कम हो जाता. साहित्य की भाषा में कहूँ तो यह कि पानी कम लजाता, कम शर्माता, कम सकुचाता --- डिटर्जेंट के कारण वह 'बोल्ड' हो जाता!

मैं इतनी देर से आपको सरफेक्टेंट की कहानी समझाने के लिए इतनी भौतिकी-चर्चा कर रहा था. सरफेक्टेंट जो हमारे फेफड़ों के भीतर लिपा हुआ है. हमारे फेफड़े जिन नन्हीं गोल संरचनाओं से बने हुए हैं, वे एल्विओलाई (एकवचन- एल्वियोलस) हैं. एल्वियोलाई के भीतर ऑक्सीजन प्रवेश करती है और एल्वियोलाई की दीवारों के पार जाकर ख़ून की नन्हीं रक्तवाहिनियों में मौजूद हीमोग्लोबिन से मिल जाती है. उधर से कार्बनडायऑक्साइड इस ओर आती है और एल्वियोलाई में एकत्र होकर फिर बाहर निकल जाती है. साँस भीतर लेते समय एल्वियोलाई में हवा भरती है, ऑक्सीजन शरीर में दाखिल होती है. साँस छोड़ते समय एल्वियोलाई सिकुड़ते हैं और कार्बनडायऑक्साइड-समेत मौजूद हवा बाहर निकल जाती है.

आप जानते हैं कि हम जन्म के बाद साँस लेते हैं, लेकिन यह भी जानिए कि इस श्वसन की तैयारी हम गर्भ में ही करने लगते हैं. भ्रूण में ही हमारे फेफड़े बनने लगते हैं. उनमें एल्वियोलाई का निर्माण होने लगता है. खोखली अंगूरनुमा ये संरचनाएँ अपने भीतर सरफेक्टेंट नामक तरल पदार्थ का लेपन भी कराने लगती हैं. इस सरफेक्टेंट में कई प्रोटीन हैं और फॉस्फोलिपिड नामक वसा हैं, जो कि जन्म के बाद साँस लेने में बहुत-ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे.

एल्वियोलाई नन्हें खोखले अंगूर हैं. इनकी भीतरी सतह पर सरफेक्टेंट नामक तरल लेप लगा है. यह एक प्रकार का डिटर्जेन्टीय गुणधर्म लिये है जिसके कारण एल्वियोलाई के भीतर पृष्ठीय तनाव कम रहता है. अगर यह सरफेक्टेंट न हो, तो हवा बाहर निकालने के बाद फेफड़ों के इन एल्वियोलाई को दुबारा खुलने और हवा भरने में बड़ी मुश्किल हो. इतनी कि साँस लेना व ऑक्सीजन ग्रहण करना समस्या बन जाए और जान पर संकट आ जाए.

इसलिए भ्रूण का शरीर गर्भ में ही सरफेक्टेंट बनाने लगता है ताकि जन्म के बाद सुचारु रूप से ली जा सके. एल्वियोलाई सिकुड़ें, तो फिर फूल सकें. उनके द्वारा ऑक्सीजन-कार्बनडायऑक्साइड का ढंग से आदान प्रदान हो सके. लेकिन क्या हो अगर कि भ्रूण को विकास का अवसर ही न मिले? क्या हो अगर उसकी माँ को उसे समय से पहले ही डिलीवर करना पड़े? हर बच्चा नौ महीने का होकर ही पैदा हो, ऐसा तो नहीं होता न? अगर कोई बच्चा छह-सात महीनों में ही पैदा हो जाए, तो उसकी साँस के साथ क्या समस्या हो?

जानिए कि गर्भावस्था के चौबीसवें से अट्ठाईसवें हफ़्तों के दौरान फेफड़ों में सरफेक्टेंट-निर्माण चालू हो जाता है और पैंतीस हफ़्ते के बच्चे अगर पैदा हों, तो उनके फेफड़ों के एल्वियोलाई में सरफेक्टेंट की समुचित मात्रा हो. इस कारण उनके एल्वियोलाई बहुत अधिक न सिकुड़ें और सिकुड़ने के बाद खुल भी सकें. लेकिन जो बच्चे पैंतीस हफ़्तों से पहले पैदा हो जाएँ, उनमें सरफेक्टेंट की मात्रा कम रह जाए. तो ऐसे में उनके श्वसन के साथ समस्या होने की आशंका को. तब डॉक्टर क्या करें?

ऐसे में डॉक्टरों को अगर अन्देशा होता है कि अमुक गर्भ को समय से पहले डिलीवर कराना पड़ सकता है, तो वे गर्भिणी को कॉर्टिकोस्टिरॉयड के इंजेक्शन दें. ये दवाएँ गर्भ में मौजूद भ्रूण के फेफड़ों के एल्वियोलाई के भीतर सरफेक्टेंट का निर्माण तेज़ कर दें ताकि जल्दी से ज़्यादा-से-ज़्यादा सामान्य रूप से सरफेक्टेंट पैदा किया जा सके. यही तरीक़ा है कि जन्म के बाद ऐसे शिशुओं का श्वसन सामान्य हो.

लेकिन अगर फिर भी सरफेक्टेंट न बन सका और शिशु-जन्म हो गया तो? ऐसे बच्चे रेस्पिरेटरी डिस्ट्रेस सिंड्रोम या हायलाइन मेम्ब्रेन डिज़ीज़ से ग्रस्त पैदा हों. इनमें साँस लेना बहुत मुश्किल हो. ऐसे में इन्हें बाहर से सरफेक्टेंट देना पड़े. और ज़रूरत पड़ने पर वेंटिलेटर पर भी रखना पड़े.

हमारी हर साँस जीवन के पहले क्षण से यों महसूस होती रही है, जैसे निष्प्रयास हो. लेकिन हवा की हर आवाजाही के पीछे सरफेक्टेंट की महत्त्वपूर्ण भूमिका है. अगर यह न रहे, तो हमारा दम घुट जाए. फेफड़ों की रक्तवाहिनियों से द्रव रिसकर एल्वियोलाई में भर जाए. फेफड़ों के भीतर हवा नहीं, पानी-ही-पानी हो जाए! यह स्थिति पल्मोनरी एडिमा के नाम से जानी जाती है. इतना ही नहीं यह सरफेक्टेंट फेफड़ों के भीतर दाखिल होने वाले कीटाणुओं के खिलाफ प्रतिरोधक-क्षमता भी मुहैया कराता है. ये नन्हें शत्रु जब एल्वियोलाई में प्रवेश करें तो सरफेक्टेंट के रसायन उन्हें नष्ट करने का प्रयास करें.

इसलिए अब साँस लेते समय मौक़ा मिले, तो पानी को एक नज़र ठहर कर देखिए. किस तरह वह लजा रहा है, सिकुड़ रहा है, सिमट रहा है. फिर डिटर्जेंट को निहारिए. किस तरह वह पानी की लज्जा कम कर रहा है. मानो कह रहा है कि इतना लजाओगे तो जीवन रुक जाएगा असंख्य फेफड़ेदार जीवों का!

पानी की शर्म फेफड़ों की सिकुड़न है. सरफेक्टेंट का उस हया को कम करना और काबू में रखना, फेफड़ों का फैल सकना. द्रव शर्माता है, तो फेफड़े की सिकुड़न में काम आता है. लेकिन द्रव को सिकुड़ते हुए कहाँ रुक जाना है, यह सरफेक्टेंट तय करता है.

जीवन लज्जा-निर्लज्जता का संगम है. पानी और सरफेक्टेंट की कहानी हमें यही सिखाती है.

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान को ऐसी दवाओं की दरकार है जो केवल उन्हीं कोशिकाओं को मारे और केवल उन्हीं रसायनों का उत्पादन बन्द करे, जो ऑटोइम्यूनिटी के लिए उत्तरदायी हैं. ये कोशिकाएँ और ये रसायन ही रोगकारी हैं और इन्हीं का शमन होना चाहिए. लेकिन शरीर के भीतर उपचार करते समय इन्हें अलग कर पाना आसान नहीं होता. ऐसे में जो दवाएँ दी जाती हैं, वे ढेरों निर्दोष कोशिकाओं पर भी आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर देती हैं. ग्लूकोकॉर्टिकॉइड-सेवन से जो प्रतिकूल प्रभाव पैदा होते हैं, वे इसी विभेद न कर पाने के कारण होते हैं. प्रतिरक्षा-तन्त्र के अच्छे और वफ़ादार सिपाही बुरे सिपाहियों के साथ मारे जाते हैं अथवा निष्क्रिय हो जाते हैं: नतीजन शरीर अपनी कमज़ोर सेना के कारण संक्रमणों से जूझने को मजबूर हो जाता है. ख़ून में ग्लूकोज़ का स्तर बढ़ाने की वजह से डायबिटीज़ का जन्म या वृद्धि होता है और सोडियम व पानी के संरक्षण के कारण सूजन आने लगती है. वसा हाथों-पैरों की जगह चेहरे और धड़ पर जमा होने लगती है, प्रोटीन व वसा को तोड़-तोड़कर शर्करा में बदला जाने लगता है. मांसपेशियाँ व हड्डियाँ भी इसी कारण कमज़ोर व भंगुर होने लगती हैं.

अब यह योग्य चिकित्सक को तय करना है कि:

1. किस रोग में ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दिए जाएँ.
2. कितनी मात्रा (यानी डोज़) में दिये जाएँ.
3. कौन सा ग्लूकोकॉर्टिकॉइड दिया जाए.
4. किस रास्ते (मुँह-शिरा-त्वचा) दिया जाए.
5. कितने दिनों तक दिया जाए.
6. ग्लूकोकॉर्टिकॉइड चलाते समय क्या सावधानियाँ और समझदारी रखी जाए.
7. ग्लूकोकॉर्टिकॉइड बन्द करते समय क्या सावधानियाँ व समझदारी रखी जाए.
8. यदि ग्लूकोकॉर्टिकॉइड देते समय कोई प्रतिकूल प्रभाव हो ही जाए, तो उससे कैसे निबटा जाए.

रामचन्द्रन को मैं समझाता हूँ कि ग्लूकोकॉर्टिकॉइड देने - न देने का निर्णय अविवेकी ढंग से नहीं लिया जा सकता. ग्लूकोकॉर्टिकॉइड बुरे हैं और केवल बुरे हैं, वे हानिकारक हैं और केवल हानिकारक हैं-- ऐसी सोच अधूरी, परिपक्व और अविवेकी भी है. कोई भी दवा अपने-आप में न अच्छी होती है और न बुरी. उसका प्रयोग ही उसे अच्छा-बुरा बनाता है. इसके बाद यह भी याद रखना चाहिए कि केवल दवा के तर्कशील-विवेकशील प्रयोग से रोगी ठीक नहीं होता. उसके स्वास्थ्य-लाभ में ऐसे अनेक कारकों का योगदान होता है जिन्हें या तो आधुनिक विज्ञान जानता नहीं है अथवा वह जानकर भी उन्हें अपने नियन्त्रण में रखने की स्थिति में नहीं है.

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड देने ही नहीं है-- यह सोच उतनी ही ग़लत है-- जितनी कि यह कि ग्लूकोकॉर्टिकॉइड हमेशा देने हैं. डॉक्टर को यह पता होना चाहिए कि कब उसे शरीर की सेना को कुन्द करना है और कब नहीं. यह चुनाव बाह्ययुद्ध और गृहयुद्ध में तर्क-विवेक से चुन सकने पर ही सम्भव है. साथ ही रोगी को यह समझना है कि डॉक्टर के उस तर्क-विवेक पर उसे कहीं-न-कहीं आस्था लानी ही पड़ेगी, क्योंकि योग्य डॉक्टर जितना तर्क-विवेक ग्लूकोकॉर्टिकॉइड से सन्दर्भ में वह नहीं ला सकता.

हम-सब केवल अपने तर्क-विवेक पर नहीं चल सकते. किसी-न-किसी परिस्थिति में अन्धा होना हमारी मजबूरी है और वहाँ हमें विश्वास उबारता है. इस पूरे लेख को पढ़ने के बाद रामचन्द्रन और उसके परिवार ने मुझमें और दृष्टिधारिता पा ली है. इसके लिए मैं पूरे परिवार को और विशेषरूप से छोटे गालव-बेला को धन्यवाद देता हूँ.

स्टेरॉयड अपने-आप में बुरे नहीं हैं, वे अच्छे भी नहीं हैं. प्रश्न यह पूछिए कि वे कितने ज़रूरी हैं.

* * *